# गुजरात का विकास : मिथक या यथार्थ

गुजरात में 2002 में हुए भयावह नरसंहार ने राज्य और वहां के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी की छवि को खासा दागदार बना दिया। इसी दाग को मिटाने के लिए मोदी और मीडिया में मौजूद उनके कुछ समर्थक पिछले काफी समय से 'विकास' नामक डिटरजेंट का सचेत रूप से इस्तेमाल कर रहे हैं। भारत के शिक्षित मध्यम वर्ग के एक तबके ने इस प्रचार को मान भी लिया है और उसके लिए मोदी विकास का दूसरा नाम बन गये हैं। पर क्या मोदी वाकई विकास का दूसरा नाम हैं? या विकास का विपरीतार्थक? इस संबंध में कई सर्वेक्षण एवं अध्ययन सामने आ चुके हैं। 'द एशियन एज', 'तहलका', 'फ्रंटलाइन' पत्र-पत्रिकाओं और हाल ही में प्रकाशित एक शोध ग्रंथ 'लैंड एक्वीजशन, डिस्प्लेसमेंट एंड रिसेटलमेंट इन गुजरात-1947-2004' ने विकास की भव्य, अचंभित कर देने वाली इमारत के पिछवाड़े में मौजूद विकराल भूख, कुपोषण, विस्थापन और बेघरी की सच्चाइयों को सामने ला कर गुजरात के विकास के मिथक को ध्वस्त कर दिया है।

पहली बात, किसी भी क्षेत्र के विकास में उस क्षेत्र के इतिहास, भौगोलिक स्थिति व प्राकृतिक संसाधनों का बहुत बड़ा हाथ होता है। गुजरात के आर्थिक विकास में इन्होंने काफी बड़ी भूमिका अदा की है। गुजरात से सटा बंदरगाह हमेशा से व्यापार व वाणिज्य का एक बड़ा केंद्र रहा है। लेकिन इसका श्रेय कथित विकास पुरुष मोदी को नहीं दिया जा सकता। समुद्र को स्थापित करने में उनकी कोई भी भूमिका नहीं। यूरोप का आधुनिक पुनर्जागरण अगर इटली से शुरू हुआ, ब्रिटेन अगर एक बड़ी औपनिवेशिक शक्ति बना तो उसके पीछे भी समुद्र की निकटता का बहुत बड़ा हाथ था। 1980 में, यानी कि विकास पुरुष नरेन्द्र मोदी के राज्याभिषेक से काफी समय पहले गुजरात भारत के तेज विका करने वाले तीन राज्यों में से एक था। सामुद्रिक व्यापार का लंबा इतिहास, विदेशों में स्थानीय लोगों का पलायन व वहां से प्राप्त होने वाली आय ने इस विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया और इसमें नरेन्द्र मोदी का कोई हाथ नहीं। तब वे आरएसएस की शाखाओं में ध्वज-प्रणाम कर रहे होंगे जो विकास की प्रक्रिया में साझेदारी नहीं कही जा सकती।

शिक्षा विकास का महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व व नागरिकों का मूलभूत अधिकार है। इस पर विकास की नींव रखीर जाती है। गौर करने वाली बात है कि इस विकास पुरुष के शासन काल में शिक्षा पर राज्य द्वारा किया जाने वाला व्यय निरंतर कम होता जा रहा है। 'प्रथम' नामक एक गैर सरकारी संगठन ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि गुजरात शैक्षणिक स्तर में बिहार से भी पिछड़ा हुआ राज्य है। गुगल, ऑक्सफैम (ऑक्सफोर्ड विश्वद्यिालय के भूतपूर्व छात्रों द्वारा दुनिया भर में चलाया जा रहा एक प्रतिष्ठित एनजीओ जो भारत में भी अच्छा काम कर रहा है) व यूनीसेफ द्वारा प्रायोजित एक अध्ययन की रिपोर्ट में कहा गया है कि गुजरात के विद्यार्थी बिहार की तुलना में काफी पिछड़े हुए हैं। और बिहार घोर पिछड़ा राज्य माना जाता रहा है।

दूसरे, बुनियादी स्वास्थ्य सुविधायें विकास को निर्धारित करने वाला दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व और साथ ही नागरिकों का एक अन्य मूलभूत अधिकार है। इनका हाल भी 'विकसित' गुजरात में आंखें खोल देने वाला है। वहां की शिशु व मातृ मृत्यु दर, महिलाओं व शिशुओं के प्रति राज्य का रवैया एक तथ्य से सामने आ जाता है। गुजरात में शिशु मृत्यु दर 1991 में 69 प्रति 1000 शिशु थी। 2005 में भारत में शिशु मृत्यु दर 54 प्रति 1000 शिशु हो गई, जबकि गुजरात में 58 प्रति 1000 शिशु थी। फिर गुजरात विकास में प्रथम राज्य कैसे हो गया? पेयजल विकास का एक अन्य निर्धारक तत्व है। गुजरात में 1999

**मोदी के विकास के एजेंडे को भाजपा के चुनावी नारे 'इंडिया शाइनिंग' से जोड़ कर भी देखा जा सकता है। भाजपा का इंडिया तो शाइन कर ही रहा था। कथित विकास के लाभ चंद लोगों द्वारा हथियाये जा रहे थे। ज़्यादा बड़ी आबादी बस इस विकास की लागत भर चुका रही थी और बेराज़गारी, विस्थापन, पलायन, कुपोषण पा रही थी।**

में 4,743 गांवों में पीने का पानी नहीं था। वहीं विकास पुरुष के सत्तासीन होने के बाद ऐसे गांवों की संख्या बढ़ कर 11, 390 हो गई। फिर गुजरात विकास में प्रथम कैसे हो गया और श्रीमान् मोदी विकास का दूसरा नाम कैसे हो गए?

हां, इस विकास पुरुष के नेतृत्व में गुजरात ने अपने ऋण भार में जरूर पहला स्थान हासिल कर लिया है। 2001 में जहां राज्य पर 1400 करोड़ का ऋण था, अब वह बढ़ कर 1,05,000 हो गया है। गुजरात में किसान परिवारों के मुखिया ही नहीं, बल्कि समूचे परिवार आत्महत्या कर रहे हैं। ऊपर जिस पुस्तक का उल्लेख किया गया है, उसमें इससे संबंधित आंकड़े देखे जा सकते हैं। मछली व्यवसाय जो कि वहां की एक बड़ी आबादी की आजीविका का स्रोत रहा है, निरंतर बदहाल होता चला जा रहा है। वजह? कथित पूंजीवादी विकास से पैदा हुए प्रदूषण के कारण समुद्र में जा रही गंदगी को अब समुद्र देवता और मछलियां सहन नहीं कर पा रहीं। वे मर रही हैं। जि समुद्र के कारणगुजरात भारत के तीन तेज विकास करने वाले राज्यों में से एक था, वही समुद्र विकास पुरुष के शासन काल में सबसे तेज गति से मर रहा है। ग़रीबी को कम करना घोषित रूप से दुनिया के लगभग हर देश के विकास के एजेंडा में है। ग़रीबी घटाने की दर भारत में 1993 स 2005 के बीच जहां 8.5 प्रतिशत रही है, वहीं विकास पुरुष के राज्य में वह मात्र 2.8 प्रतिशत का आंकड़ा ही छू पाई है। समाज में महिलाओं की स्थिति भी विकास का एक बड़ा सूचक है। स्वयं सरकारी आंकड़ों के अनुसार गुजरात में प्रतिदिन एक बलात्कार,महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के रोज़ाना मामले दर्ज किये जाते हैं। न सूचित किये गये ऐसे मामलों की संख्या न जाने कितनी होगी। पिछले दस सालों में वहां 18,152 महिलाओं ने आत्महत्या की है। लिंगानुपात पर निगाह डालें। गुजरात में वह 600 लड़कियां प्रति 1000 लड़के का है।

1947 के विभाजन के दौरान 1 करोड़ 50 लाख लोग विस्थापित हुए थे। लेकिन 1947 के बाद अकेले गुजरात में इससे कहीं अधिक लोग विस्थापित हो चुके हैं और इनमें ज़्यादातर का पुनर्वास नहीं हुआ। इन लोगों सबसे बड़ी संख्या ग़रीबों में सर्वाधिक ग़रीबों और आदिवासियों की है। नर्मदा परियोजना को शुरू हुए करीब 49 वर्ष हो गये हैं और अब तक इस पर 29,000 करोड़ रुपये खर्च भी हो चुके हैं। लेकिन केवल 29 प्रतिशत ही काम पूरा हुआ है। इस परियोजना से नागरिक अधिकारों के बड़े मुद्दे जुड़े हुए हैं ।उसके लिए एक लंबे समय से संघर्ष भी मेधा पाटकर के नेतृत्व में चल ही रहा है। वह भी एक अलग मुद्दा नहीं, बल्कि कथित विकास की धारणा से ही जुड़ा मुद्दा है और विकास की इस बीमार अवधारणा को हमारे समाज के शिक्षित व खात-पीते वर्ग का एक बड़ा हिस्सा वीकार ही नहीं कर चुका है, बल्कि उसका हिमायती भी बन चुका है। उन्हीं के लिए गुजरात तेजी से विकास करता राज्य है और मोदी विकास का एक दूसरा नाम। यह दरअसल विनाश का दूसरा नाम है। मोदी के विकास के एजेंडे को भाजपा के चुनावी नारे 'इंडिया शाइनिंग' से जोड़ कर भी देखा जा सकता है। भाजपा का इंडिया तो शाइन कर ही रहा था। कथित विकास के लाभ चंद लोगों द्वारा हथियाये जा रहे थे। ज़्यादा बड़ी आबादी बस इस विकास की लागत भर चुका रही थी और बेराज़गारी, विस्थापन, पलायन, कुपोषण पा रही थी। एक विशाल, विकराल अंधेरे के बीच जैसे एक महल चमक रहा हो और उसके भीतर से आवाज़ आ रही हो - इंडिया शाइनिंग। रोशनी का केंद्र नन्हा-सा था। अंधेरे का हाशिया बहुत बड़ा। वहां की आवाज़ें अलग थीं। वहां चीखें थीं, कराहें थीं। अंधेरा बोला और छोटा-सा रोशनी का महल ध्वस्त हो गया। इस विकास पुरुष का विकास रोशनी के छोटे से दायरे के चारो ओर हिंसा का बड़ा अंधेरा बना रहा है। अंधेरा एक दिन बोलता है। क्या वे बच्चे नहीं बोलेंगे जिनकी मां-बहनों के साथ बलात्कार हुआ, जिनके पिता-भाई की हत्या हुई? बोलेंगे। क्या वे आदिवासी नहीं बोलेंगे जिनके जंगल उनसे छीने जा रहे हैं और जिन्हें विस्थापित किया जा रहा है। बोलेंगे। वे बोल रहे हैं। विनाश पुरुष से जवाब मांग रहे हैं। जब अंधेरा बोलेगा तो राज्य उसे कानून-व्यवस्था का मामला बना कर पेश करेगा। विकास से पैदा हुए विनाश के खिलाफ़ जनाक्रोश का मामला नहीं। उसे आतंकवाद कह देगा और वॉर अगेन्स्ट टैरेरिज्म नाम पर फिर से हिंसा कर उसे औचित्य देगा। रोशनी के छोटे-से दायरे में बैठे खाते-पीते लोग इस प्रचार को तब भी मान लेंगे। मान रहे हैं। जो सोचते हैं कि वे बस इस कथित विकास के फल चखते रहें, क्या उन्हें नहीं मालूम कि इससे होने वाले विनाश के फल भी एक दिन उनहें चखने ही पड़ेंगे? उन्हें मालूम होना चाहिए।

**- नेहा**

## कसाब को सजा-ए-मौत

# क्या यह कोई अनूठा मामला है?

मुंबई पर आतंकी हमले के दोषी आमिर अजमल कसाब को फांसी की सजा सुना दिये जाने से पूरे देश में प्रसन्नता जाहिर की जा रही है। आतंकी हमले के शिकार कुछ परिवारों के लोग़ों का तो कहना है कि कसाब को तड़पा-तड़पा कर मारना चाहिए। वैसे फांसी की सजा सुना दिये जाने का यह मतलब नहीं है कि उसे फांसी लग ही जानी है। अभी विशेष अदालत द्वारा दी गई इस सजा के विरुद्ध वह उच्च न्यायालय जायेगा, फ़िर उच्चतम न्यायालय और वहां भी उसकी फांसी की सजा मुकर्रर रहती है तो उसके पास राष्ट्रपति के पास दया-याचना का विकल्प खुला रहता है। यानी इस सारी प्रक्रिया में बरसों का समय लग जाना है और तब तक इस बात में कोई संदेह नहीं कि आतंकवादी हिंसा की कोई और बड़ी घटना इस देश में हो जाये और लोग़ कसाब को भूलने लगें। अभी तो 59 लोग़ों की दया-याचना की अर्जी पिछले आठ वर्षों से राष्ट्रपति के पास लंबित पड़ी हुई है जिसमें साठवें पायदान पर अब कसाब भी जा खड़ा होगा। इस बीच कोई न कोई हवाई जहाज कंधार ले जाया जायेगा और कोई न कोई जसवंत सिंह बाइज्जत कसाब को वहां छोड़ कर आयेगा। कसाब को जेल में उच्चतम श्रेणी की सुरक्षा मिली हुई है। अब तक उसकी सुरक्षा पर करोड़ों करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं और आगे भी होंगे। यह नहीं भूलना चाहिए कि कसाब जैसे एक नहीं, न जाने कितने आतंकवादी हैं जो दिन-रात आने 'मिशन' में लगे रहते हैं। भारत पर जिसे 'पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद' कहा जाता है, उसका ख़तरा हमेशा मंडराता रहता है और कभी देश के इस इलाके तो कभी उस इलाके में सरकार 'हाई अलर्ट' घोषित करते रहती है।

ऐसे में कसाब जैसे आतंकवादियों की न कोई कमी रही है और आगे भी नहीं रहेगी।

कसाब और उसके साथियों ने दिन-दहाड़े मुंबई में पुलिस अफ़सरों और सुरक्षाकर्मियों के साथ ही 165 लोग़ों को मारा और ऐसा डंके की चोट पर किया। फ़िर गिरफ़्त में आये कसाब को तो फांसी की सजा से कम क्या मिलती। इसमें आखिर ऐसी क्या बात है कि सरकारी लोक अभियोजक उज्ज्वल निकम इसे अपनी एक बड़ी जीत बता रहे हैं और मीडिया भी इस मामले को इस रूप में दिखा रहा है कि मानो अब इससे बड़ा मामला इस देश के सामने कोई रहा ही

**विदित है कि विशेष ट्रायल कोर्ट में ट्रायल कोर्ट एवं पुलिस ने इस मामले को निपटाने में पूरे 17 महीने लगा दिये जबकि इस कोर्ट व संबंधित पुलिस अधिकारियों के पास सिवा इस के और कुछ काम नहीं था। इससे यह समझना मुश्किल नहीं है कि इस तरह के अन्य गंभीर आपराधिक मामलों की क्या दुर्दशा होती होगी जो सामान्य कोर्टों द्वारा सुने जाते हैं। कसाब को दी गई विशेष सुरक्षा व्यवस्था जिसमें मुंबई पुलिस के अलावा अन्य अर्द्धसैन्य बल भी लगाये गये जिस पर करोड़ों रुपया बर्बाद हो गया, इस बात का द्योतक है कि इस देश की जेलों में सुरक्षा व्यवस्था कितनी लचर-पचर हो चुकी है।**

न हो। कसाब जैसे आतंकवादियों को फांसी की सजा से कम मिलने के बारे में पहले भी कोई सोच नहीं रहा था। उसे फांसी की सजा मिलेगी, यह लगभग तय था। फिर इस मामले को इतना उछालने की जरूरत आखिर क्यों है? इस देश का मीडिया इस मामले को इतना उछाल कर क्या जाहिर करने की कोशिश में लगा हुआ है? एक बात और, कसाब के मामले में क्या न्यायपालिका को अपने आप पर यह भरोसा नहीं था कि वह 'न्याय' कर पायेगी या नहीं? अब न्यायाधीश टहलियानी का यह कहना है कि कसाब जैसे फांसी की सजा पाये अपराधी को ज़्यादा समय तक जिंदा रहने का मौका दिया जाना इस देश के लिए खतरनाक हो सकता है। तो क्या न्यायाधीश चाहते हैं कि कसाब के मामले में न्यायिक प्रक्रिया को पूरा नहीं चलने दिया जाये। यानी न्यायिक प्रक्रिया अपना चक्र पूरा न करे। यदि ऐसा है तो सवाल उठ सकता है कि न्यायिक व्यवस्था में ही कहीं न कहीं खामी है, जिससे दोषियों को बच जाने का मौका मिलता है।

कसाब को मिली फांसी की सजा को पाकिस्तान पर एक जीत के तौर पर देखा जा रहा है, जबकि इस तरह की भावना को मीडिया द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना अंध राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के समान है। कसाब को मिली फांसी की सजा को सामान्य न्यायिक प्रक्रिया के रूप में ही लिया जाना चाहिए। इसे इस रूप में देखना और दिखलाना ग़लत होगा कि मानो कोई जंग फ़तह कर ली गई हो। हमारी खोखली एवं नाकारा हो चुकी न्याय व्यवस्था के लिए शायद यह एक अत्यधिक गौरव की बात हो सकती है कि उसने उस कसाब को फांसी की सजा सुना दी और वह भी एक रिकार्ड समय में, जिसने सर्वजनिक रूप से सैंकड़ों लोग़ों का कत्ल किया हो। प्राय: इस देश की न्याययिक व्यवस्था से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह कोई काम समय पर और ढंग से कर सके। कसाब का मामला सही ढंग से निपटा कर इस न्यायिक व्यवस्था ने कोई बहुत बड़ा तीर नहीं मार दिया है। विदित है कि विशेष ट्रायल कोर्ट में ट्रायल कोर्ट एवं पुलिस ने इस मामले को निपटाने में पूरे 17 महीने लगा दिये जबकि इस कोर्ट व संबंधित पुलिस अधिकारियों के पास सिवा इस के और कुछ काम नहीं था। इससे यह समझना मुश्किल नहीं है कि इस तरह के अन्य गंभीर आपराधिक मामलों की क्या दुर्दशा होती होगी जो सामान्य कोर्टों द्वारा सुने जाते हैं। कसाब को दी गई विशेष सुरक्षा व्यवस्था जिसमें मुंबई पुलिस के अलावा अन्य अर्द्धसैन्य बल भी लगाये गये जिस पर करोड़ों रुपया बर्बाद हो गया, इस बात का द्योतक है कि इस देश की जेलों में सुरक्षा व्यवस्था कितनी लचर-पचर हो चुकी है।

**- प्रतिनिधि**